45

कोई परम्परा कब बुरी होती है?

मत्ती 15:7-20; मरकुस 7:6-8, 14-23, एक निकट दृष्टि

पिछले पाठ में हमने सीखा था कि ''परम्परा'' शब्द का अर्थ मूलत: ''वह जो सौंपा गया है'' है। इसे परमेश्वर की ओर से सौंपी गई कहा जा सकता है। परन्तु आम तौर पर इसे मनुष्यों द्वारा दी गई ही माना जाता है। हमने ज़ोर दिया था कि यह तथ्य कि कोई परम्परा मनुष्यों से निकली है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह बुरी है। परन्तु, मत्ती 15 और मरकुस 7 में यीशु के कठोर शब्द इस बात में कोई संदेह नहीं रहने देते कि मनुष्यों की परम्पराएं बुरी ही नहीं बल्कि बहुत बुरी हो सकती हैं। हमारा बाइबल पाठ यह तय करने के लिए कि कोई परम्परा बुरी है या नहीं, कम से कम तीन मापदण्ड सुझाता है। हमने पहले चर्चा की थी कि *कोई परम्परा तब बुरी होती है, जब यह परमेश्वर की स्पष्ट आज्ञा का उल्लंघन करती है*।[1] इस पाठ में हम दो अन्य मापदण्डों की समीक्षा करेंगे। ऐसा करते हुए, हम अपने आप को भी जांचें (2 कुरिन्थियों 13:5)!

कोई परम्परा[2] तब बुरी होती है जब यह दूसरों पर थोपी जाती है (मत्ती 15:7-9; मरकुस 7:6-8)

फरीसियों से बात करते हुए मसीह बड़ा ही स्पष्ट हो गया था: ''हे कपटियो, यशायाह ने तुम्हारे विषय में यह भविष्यवाणी की थी कि ये लोग होंठों से तो मेरा आदर करते हैं, परन्तु उनका मन मुझसे दूर रहता है। और ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्यों की विधियों को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं'' (मत्ती 15:7-9)। यह हवाला यशायाह 29:13 से लिया गया है। उस पर्व में, नबी अपने समय के कपटियों को डांट रहा था। यीशु ने कहा कि परमेश्वर की प्रेरणा से दिए गए वचन उसके समय के धार्मिक अगुओं पर भी लागू होते थे।

यशायाह के वचनों से कई महत्वपूर्ण सबक सीखे जा सकते हैं: ''मुंह से स्तुति करना'' ही काफ़ी नहीं है; प्रभु के प्रति हमारी आज्ञाकारिता मन से होनी आवश्यक है (मत्ती 22:37; रोमियों 6:17; इफिसियों 6:6; कुलुस्सियों 3:16; 2 कुरिन्थियों 9:7)।

हमने देखा है कि हमारी आराधना ''व्यर्थ'' (खाली[3]) है, यदि यह मन की प्रेरणा से और स्वर्ग के अधिकार से नहीं है। इस चर्चा में, मैं इस हवाले के अन्तिम भाग पर ध्यान दिलाना चाहता हूं: वे ''मनुष्यों की विधियों को धर्मोपदेश करके'' सिखा रहे थे। संदर्भ इस बात को स्पष्ट कर देता है कि वे ''मनुष्यों की विधियों को'' ऐसे सिखा रहे थे जैसे वे *परमेश्वर के* ''वचन'' हों। फरीसियों की नज़र में परज़्पराओं का अत्यधिक महत्व होने के कारण, यीशु यह समझाना चाहता था कि वे *मनुष्यों* की बनाई हुई शिक्षा है, न कि प्रभु की शिक्षा।

परज़्पराओं को आज्ञाओं की तरह लागू करना

ज़्या मसीह ने हर बार खाने से पहले फरीसियों के जटिल अभिषेकों में से गुज़रने की निन्दा की? नहीं, यदि वे बेतुके कर्मकांडों में समय गंवाना चाहते थे, तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर था। फरीसियों की निन्दा यीशु ने उनके इस व्यवहार के लिए नहीं, बल्कि अपने व्यवहार को दूसरों पर थोपने के प्रयास के कारण की। उन्होंने अपनी परज़्पराओं को ईश्वरीय आज्ञाओं के स्तर तक पहुंचा दिया था। वे सिखाते थे कि लोगों के लिए उनकी परज़्पराओं का पालन करना आवश्यक *था*। वे उन परज़्पराओं का पालन न करने वाले सब लोगों को दोषी ठहराते थे। आइए दूसरे मापदण्ड को इस प्रकार लिखते हैं: *कोई परज़्पारा तब बुरी होती है, जब वह दूसरों पर थोपी जाती है।*

हर कोई देख सकता है कि ऐसा व्यवहार कम से कम सैद्धान्तिक रूप में तो गलत है। वर्षों से, हमारे परिवार ने छुट्टियों तथा अन्य जश्न के सज़्बन्ध में अपनी विलक्षण (विशेष?) परज़्पराएं बना ली हैं। हमें इनमें आनन्द आता है और इन से यह समझने में सहायता मिलती है कि हम कौन हैं। निश्चय ही हम इन्हें दूसरों पर थोपने का प्रयास नहीं करते। हमारे परिवार की परज़्पराओं का पालन न करने पर दूसरे घरों को दोषी ठहराना, कम से कम भी कहें तो उपहासजनक तो अवश्य है।

यीशु ने यह स्पष्ट सिखाया कि दूसरों पर अपनी धार्मिक परज़्पराएं थोपना गलत है। जब हम इस सिद्धांत को *लागू* करने का प्रयास करते हैं, तभी विवाद पैदा होता है। स्वाभाविक है कि लोग ''अपने ही ढंग से'' सुखी होते हैं और हमें यह मानना ही होगा कि ऐसा ही होना *चाहिए* तो भी जो बदला नहीं जा सकता (परमेश्वर की प्रकट इच्छा) और जो बदला जा सकता है (उसकी इच्छा को पूरा करने के लिए इस्तेमाल होने वाले ढंग), में अन्तर करने की कोशिश करना ज़रूरी है।

आराधना के क्षेत्र से मन में कई उदाहरण आते हैं:[4] अधिकतर मण्डलियां, जिनमें मैंने प्रचार किया है, उनके पास गीतों की किताबें होती हैं। ज़्या हमें किसी मण्डली को इसलिए दोषी ठहराना चाहिए कि वहां गाने एक बड़ी स्क्रीन पर लिख दिए जाते हैं?[5] मैंने जहां भी आराधना की है, रविवार प्रात: काल की सभा में सरमन अवश्य होता है। ज़्या किसी रविवार प्रात: काल की आराधना सभा में मुज़्य तौर पर गीत, प्रार्थना, प्रभु भोज लेने पर केन्द्रित वचन पढ़ना गलत होगा?[6] जिन मण्डलियों के साथ मैं जुड़ा हुआ हूं, वे कलीसिया के भवन में रविवार रात के समय आराधना करती हैं। यदि कोई दूसरी मण्डली रविवार शाम

की आराधना घरों में करने का फैसला लेती है तो ज़्या यह बाइबल के विरुद्ध होगा ?[7] मैं यह नहीं पूछ रहा कि ''ज़्या यह व्यावहारिक है ?'' मैं तो केवल यह पूछ रहा हूं कि ''ज़्या यह बाइबल के विरुद्ध है ?''

नया नियम हमें आराधना के लिए एक नमूना देता है, परन्तु उसमें कई बातों का निर्णय हम पर छोड़ दिया जाता है। वर्षों से, मण्डलियां ऐसे ढंग अपनाती रहती हैं, जो पवित्र शास्त्र की शर्तों को पूरा करने के लिए उनके लिए आसान हों। इसमें कोई बुराई नहीं है, परन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हम, जो *परमेश्वर* की ओर से सौंपा गया है (अर्थात ईश्वरीय नमूना) और जो *मनुष्यों* की ओर से सौंपा गया है (अर्थात उस ईश्वरीय नमूने को कार्यान्वित करने के लिए हमारे ढंग), में अन्तर करें।[8]

जब मेरा परिवार मुस्कोगी, ओज़्लाहोमा में वेस्ट साइड चर्च ऑफ़ क्राइस्ट के साथ काम करता था, तो वहां चार्ल्स कैली नाम का एक सॉन्ग लीडर होता था, जो कभी-कभी आराधना सभा के क्रम को बदल देता था। उदाहरण के लिए, हमने भोज में आराधना के आरज़्भ में या अन्त में भाग लिया हो सकता है। कई बार, वह परज़्परा के विपरीत चन्दा भोज के तुरन्त बाद लेने के बजाय प्रभु-भोज से पहले किसी और समय ले लेता था।[9] एक रविवार सुबह आराधना में जब प्रभु-भोज के बाद चंदा नहीं लिया गया, तो बाहर से आई एक स्त्री तुरन्त आराधना सभा से उठकर चली गई। वह बिल्डिंग से बाहर जाकर प्रवेश द्वार पर एक आदमी से कहने लगी, ''मैं कैसे लोगों में आ गई हूं ?'' स्पष्टतया उसका विश्वास था कि ''आराधना का क्रम बाइबल में दिया गया है''[10] और उसमें कोई भी परिवर्तन करना ''बाइबल के विरुद्ध'' है।

मैं इन मूल सिद्धांतों पर अत्यधिक बल नहीं दे सकता, ज़्योंकि आवश्यक है कि परमेश्वर की आज्ञाओं और मनुष्यों की परज़्पराओं में अन्तर किया जाए; मनुष्यों द्वारा बनाई गई परज़्पराओं को दूसरों पर थोपना गलत है। यह मानते हुए कि यहां तक हम सब इस बात पर सहमत हैं, नाजुक प्रश्न आता है कि ''हम परमेश्वर की आज्ञाओं और मनुष्यों की परज़्पराओं में अन्तर कैसे करें ?''

परज़्पराओं तथा आज्ञाओं में अन्तर करना

कुछ समय से चल रही किसी बात पर लागू होने वाले ''परज़्परागत'' शज़्द इस अर्थ के साथ कि यह पुरानी और जीर्ण हो चुकी है, इसलिए इसका कोई लाभ नहीं या किसी काम की नहीं, और इसे आसानी से बन्द किया जा सकता है, अज़्सर सुनने में आते हैं। उदाहरण के लिए, मैंने ''परज़्परागत परिवार''[11] (अर्थात पिता, माता और उनके बच्चों वाला परिवार) वाज़्यांश का इस्तेमाल अपमानजनक ढंग से होते सुना है। जो लोग बाइबल में विश्वास करते हैं, उनके लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं कि ''यह प्रबन्ध कितना पुराना है ?'' बल्कि यह है कि ''ज़्या यह स्वर्ग की ओर से है या मनुष्यों की ओर से ?'' (मज़ी 21:25)।

प्रभु की कलीसिया की विश्वासी मण्डलियों को ''परज़्परागत कलीसियाएं'' कहे

जाने पर और उनके विश्वास और व्यवहार को ''परज़्परागत स्थिति'' कहकर नकार देने से मुझे निराशा होती है। उनके काम पर विश्वास और न्याय के मामले में अन्तर किए बिना यह लेबल लगाने के इच्छुक लोग इन कलीसियाओं की *हर बात* को ''परज़्परागत'' का नाम देना चाहते हैं।

मैंने हर मुद्दे से जुड़े यह संकेत देते लैज़्चर सुने हैं कि वे *सब* केवल विचार की बातें हैं और इससे अधिक इनका महत्व नहीं है, जिनसे अतीत में कलीसिया को हानि हुई है। पीछे की ओर देखते हुए, मैं इस बात से सहमत हूं कि कुछ विवाद अनावश्यक लगते हैं, परन्तु ज़्या कलीसिया के सामने आने वाले हर प्रश्न को यूं ही छोड़ देना उचित है। यदि प्रारज़्भिक कलीसिया के सामने यहूदी मत और संदेहवाद के मुद्दों को मसीही लोग कम कर देते तो परमेश्वर की प्रेरणा पाए हुए लोगों की प्रतिक्रिया ज़्या होती?

हमें इस बात पर सहमत होना आवश्यक है कि मनुष्य की बनाई गई परज़्परा जब दूसरों पर थोपी जाती है तो यह बुरी होती है। आइए हम इस बात से सहमत हों कि हमें किसी भी विश्वास या व्यवहार को ''परज़्परागत'' केवल इसलिए नहीं मान लेना चाहिए कि यह समय के साथ नहीं चलता।

पहले मैंने कहा था कि नाजुक प्रश्न परमेश्वर की आज्ञाओं और मनुष्यों की परज़्पराओं में अन्तर करने का है। आप इस प्रश्न का उज़र जानते हैं और कई बार इस प्रवचन में इसका संकेत भी दिया गया है: हमारा हर विश्वास, शिक्षा और काम, *वचन की शिक्षा के प्रकाश में* परखा जाना आवश्यक है। प्रश्न यह नहीं है कि ''हम पहले कैसे करते रहे हैं?'' निश्चय ही प्रश्न यह भी नहीं है कि ''हम कैसे करना *पसन्द* करेंगे?'' प्रश्न तो यह है कि ''परमेश्वर अपनी प्रकट इच्छा अर्थात बाइबल में ज़्या सिखाता है?'' (देखें प्रेरितों 17:11)। आइए हम यीशु के शज़्दों से लेते हुए कहें (मज़ी 21:25) कि यदि कोई शिक्षा या व्यवहार ''स्वर्ग की ओर से'' है, तो यह हर मसीही पर लागू होती है। यदि यह ''मनुष्यों की ओर से'' है, तो हम इसे दूसरों पर थोपकर दोषी न बनें।

यह उज़र देते हुए, ज़्या मैंने जो ''परज़्परागत'' है और जो नहीं है, पर हर उलझन सुलझा दी है? ज़्या मैंने पूछे जाने वाले हर प्रश्न का उज़र दे दिया है? नहीं, बिल्कुल नहीं। मेरा उद्देश्य मसीही लोगों से चरम से बचने का आग्रह करना है। हम अपनी परज़्पराओं को दूसरों द्वारा न माने जाने पर उन्हें दोषी न ठहराएं। इसके साथ ही, हम किसी धार्मिक शिक्षा या व्यवहार को ''परज़्परागत'' केवल इसलिए न कहें कि यह वर्षों पुरानी है। नया नियम तो उससे भी पहले सदियों से है। आइए हम किसी भी धार्मिक शिक्षा या व्यवहार को स्वीकार करने या ठुकराने के लिए अपने मापदण्ड *परमेश्वर के वचन* की शिक्षा को बनाएं।

बहुत पुरानी बात है, यहोशू ने परमेश्वर के लोगों को उसका संदेश दिया था: ''इतना हो कि तू हियाव बांधकर और बहुत दृढ़ होकर जो व्यवस्था मेरे दास मूसा ने मुझे दी है, उन सब के अनुसार करने में चौकसी करना; और उससे न तो दाहिने मुड़ना और न बाएं, तब जहां-जहां तू जाएगा वहां-वहां तेरा काम सफल होगा'' (यहोशू 1:7; 23:6 भी देखें)। हम ''दाहिने मुड़ना'' को जिसे परमेश्वर ने नहीं बांधा है (मनुष्यों की परज़्पराओं) के रूप

में और ''बाएं'' मुड़ना को परमेश्वर के बांधे (उसकी प्रकट इच्छा) को खोलना के रूप में समझें। हमें इन दोनों चरमों से बचने की कोशिश करनी चाहिए। हमें यीशु के नये नियम की शिक्षा ''के अनुसार सब करने'' का निश्चय करना चाहिए!

हम इस विचार को खत्म कर सकते हैं, परन्तु मसीह ने अपनी चर्चा को यहां खत्म नहीं किया। उसने मनुष्यों की परम्पराओं के सम्बन्ध में कम से कम एक और बात कही थी। यह सच्चाई इतनी स्पष्ट न होने के बावजूद महत्वपूर्ण है। इसके लिए पिछले दो मापदण्डों की तरह या इससे भी अधिक मन टटोलने की आवश्यकता है।

कोई परम्परा तब बुरी होती है, जब उसे आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जाता है (मत्ती 15:10-20; मरकुस 7:14-23)

यीशु और फरीसियों की बातचीत गुप्त में नहीं हुई थी। मसीह का कठोर मन वाले उन अगुओं के सामने अपना और अपने चेलों का बचाव करने का इरादा नहीं था, परन्तु उसने सोचा कि उनकी सुनने वाले लोगों को इसका अर्थ पता होना आवश्यक है। मरकुस ने उठाए गए इस मूल मुद्दे पर सुनाए गए वचन को एक ही पद में संक्षिप्त किया है:

> और उस ने लोगों को अपने पास बुलाकर उन से कहा, तुम सब मेरी सुनो, और समझो। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मनुष्य में बाहर से समाकर उसे अशुद्ध करे; परन्तु जो वस्तुएं मनुष्य के भीतर से निकलती हैं, वे ही उसे अशुद्ध करती हैं (मरकुस 7:14, 15)।

अन्य बातों के साथ यीशु यह सिखा रहा था कि खाने से पहले हाथ धोने की मनुष्यों की परम्परा तर्कहीन है। सच्चाई तो यह है कि बिना हाथ धोए खाया जाने वाला भोजन[12] व्यक्ति को अशुद्ध नहीं करता है (मत्ती 15:20ख)। इसके विपरीत, व्यक्ति के मन से निकलने वाली वस्तुएं अर्थात उसकी बातें और उसके काम उसे अशुद्ध कर सकते हैं।

मसीह की बात के कर्मकांडी स्नान के तुरन्त प्रश्न के गहरे अर्थ थे। मरकुस ने यीशु की बात से एक निष्कर्ष का उल्लेख किया है: ''यह कहकर उस ने सब भोजन वस्तुओं को शुद्ध ठहराया[13]'' (मरकुस 7:19ख)। हम में से उनके लिए जो नये नियम की शिक्षा से परिचित हैं, यह समझना कठिन है कि प्रभु की बातें उसके सुनने वालों को कितनी उपहासजनक लगी होंगी। यहूदी ज़्या खा सकते थे और ज़्या नहीं, इस सम्बन्ध में व्यवस्था की आज्ञा (लैव्यव्यवस्था 11) उन्हें बचपन से ही बता दी जाती थी। मसीह की बातें इतनी चकित करने वाली थीं कि जब वह अपने चेलों के साथ अकेला था, तो पतरस ने उससे कहा कि ''यह दृष्टांत हमें समझा दो'' (मत्ती 15:15)। ''दृष्टांत'' शब्द का इस्तेमाल यह संकेत देता है कि पतरस को लगा कि इस वाक्य को निश्चित तौर पर उसके मूल अर्थ में नहीं लिया जा सकता![14]

यह कहते हुए कि ''क्या तुम भी ऐसे नासमझ हो?'' (मरकुस 7:18क) यीशु ने अवश्य अपना सिर हिलाया होगा। उसे हैरानी हुई थी कि भीड़ उसकी बात को नहीं समझी

थी, परन्तु स्पष्टतया उसे उज़्मीद थी कि उसके प्रेरितों को लोगों से अधिक समझ थी। तौ भी, उसने धीरज से समझाया, ''ज़्या तुम नहीं समझते, कि जो वस्तु बाहर से मनुष्य के भीतर जाती है, वह उसे अशुद्ध नहीं कर सकती? ज़्योंकि वह उसके मन में नहीं, परन्तु पेट में जाती है, और संडास से निकल जाती है?'' (मरकुस 7:18ख, 19क)। अन्य शज़्दों में, खाना और पाखाने से निकल जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसका मनुष्य के नैतिक महत्व से कोई सज़्बन्ध नहीं।

यहां एक चेतावनी की बात है। आर. सी. फोस्टर ने लिखा है, ''इस सिद्धांत को नशीली शराब या किसी ऐसे विष के लिए इस्तेमाल करना इसके बिल्कुल उलट होगा।''[15] कुछ चीज़ें जो मुंह में जा सकती हैं, हानिकारक हो *सकती* हैं। कितनी बार माता-पिता छोटे बच्चों से कहते हैं, ''इसे मुंह से बाहर निकाल दो!'' शरीर तो ''परमेश्वर का मन्दिर है'' (1 कुरिन्थियों 3:16, 17; 6:19); इसलिए मन्दिर को हानि पहुंचाने वाली किसी भी चीज़ से परहेज़ रखा जाना आवश्यक है। मसीह के मन में ऐसी कोई बात नहीं थी, जो हानिकारक हो सकती है; उसका ध्यान स्वास्थ्यवर्धक, भोजन पर था, जिसे यहूदी लोग ''अशुद्ध'' मानते थे।

उसने अपनी व्याज़्या जारी रखी:

> जो मनुष्य में से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है। ज़्योंकि भीतर से अर्थात् मनुष्य के मन से, बुरी-बुरी बातें व्यभिचार, चोरी, हत्या, परस्त्रीगमन, लोभ, दुष्टता, छल, लुचपन, कुदृष्टि, निन्दा, अभिमान, और मूर्खता निकलती हैं। ये सब बुरी बातें भीतर ही से निकलती हैं और मनुष्य को अशुद्ध करती हैं (मरकुस 7:20-23)।

उस समय मन की समस्या

दी गई ''बुरी बातों'' की सूची के बारे में काफ़ी कुछ कहा जा सकता है, परन्तु मैं ''मन'' शज़्द पर ध्यान दिलाना चाहता हूं। इस पूरी कहानी में, यीशु ने ज़ोर दिया कि फरीसियों की मुज़्य समस्या *मन* या हृदय की समस्या थी। इससे पहले उसने ऐसी ही एक बात कही थी, ज़्योंकि वे *मन* से परमेश्वर की आराधना नहीं कर रहे थे (मज़ी 15:8; मरकुस 7:6)। यानि कि यहां पर उसने कहा कि उनका ध्यान बाहरी रूप अर्थात उस पर है, जो मनुष्य के भीतर जाता है, जबकि उन्हें भीतर पर अर्थात *मन* पर ध्यान देना चाहिए, जिससे भलाई और बुराई दोनों निकलते हैं।

किसी परज़्परा के बुरा होने या न होने को निश्चित करने के तीसरे मापदण्ड का सुझाव मिलता है: *कोई परज़्परा तब बुरी होती है, जब उसे आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जाता है* अर्थात जब यह हमें मतिभ्रष्ट करने वाले आत्मिक महत्व देती या हमारे लिए इतनी आवश्यक हो जाती है कि हम इसे मानकर परमेश्वर की आज्ञाओं के लिए अपनी दिलचस्पी खत्म कर देते हैं। मसीह ने कहा कि फरीसियों ने अपनी परज़्पराओं से घिरे होने के कारण परमेश्वर की आज्ञा *नज़रअन्दाज* कर दी (मरकुस 7:8)।

आज की मन की समस्या?

जैसा पहले कहा गया है, परज़्पराओं को आवश्यकता से अधिक महत्व देने की चिन्ता परज़्पारा के बुरा होने या न होने को तय करने के लिए दूसरे मापदण्ड से अधिक रुकावट वाली है। यह जांच यथार्थ कम, काल्पनिक अधिक है; तो भी यह महत्वपूर्ण है। तीसरा खतरा, जिसकी हमने चर्चा की है, दूसरे दोनों से अधिक फंसाने वाला हो सकता है। हो सकता है कि मैंने और आपने परमेश्वर की आज्ञाओं की जगह अपनी परज़्पराओं को न दी हो। हो सकता है कि हमने अपनी परज़्पराओं को न माने जाने पर दूसरों को दोषी न ठहराया हो। परन्तु फिर भी सज़्भव है कि हमारी परज़्पराएं हमारे लिए इतनी महत्वपूर्ण हो जाएं कि प्रभु की आज्ञा तोड़ने के बजाय उनका पालन न करने पर लोगों को हम अधिक दोषी ठहराएं।

ज़्या आप सिर हिलाते हुए यह सोच रहे हैं, ''मैं तो लोगों को ऐसे ही जानता हूं''? चेतावनी की बात है कि यह *दूसरों* पर लागू होने वाला सिद्धांत नहीं है। यह तो *अपने* ऊपर लागू होने वाला सिद्धांत है। मैं किसी के मन की बात नहीं जान सकता। मुझे *लग* सकता है कि किसी की परज़्पराएं उसके लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं, परन्तु मैं यह *जान* नहीं सकता। दो लोग एक जैसी परज़्पराओं को मान रहे हो सकते हैं, जिनमें एक तो उचित परिप्रेक्ष्य से और दूसरा विकृत परिप्रेक्ष्य से मानता है। इस बात में हम दूसरों पर आरोप लगाने के दोषी न हों (मज़ी 7:1, 2; रोमियों 2:1); आइए हम अपने ऊपर दोष लगाने वाले अर्थात अपना न्याय करने वाले ही हों।

सारांश

परज़्पारा पर यीशु की शिक्षा की चर्चा को समाप्त करते हुए, बाइबल से बाहर का एक पुराना नारा ध्यान में आता है: ''विश्वास, अर्थात एकता की बातों में; विचार की स्वतन्त्रता की बातों में; सब बातों में, प्रेम की बातों में।'' इस आदर्श वाज़्य के तीन भागों में तीन प्रश्नों का सुझाव मिलता है, जिनके बारे में हमें यह पूछने की आवश्यकता है कि हमें धार्मिक तौर पर ज़्या करना और ज़्या सिखाना चाहिए।

''*विश्वास अर्थात एकता की बातों में।*'' ''विश्वास की बात'' इतनी महत्वपूर्ण है कि परमेश्वर ने इसे अपने वचन में बताया है (रोमियों 10:17)। ऐसे मामलों में, हमारा एक होना आवश्यक है (1 कुरिन्थियों 1:10)। इससे हमें पहले प्रश्न का सुझाव मिलता है, जो हमें पूछना आवश्यक है: ''*जो मैं करता और सिखाता हूं ज़्या उसके लिए बाइबल मुझे अधिकृत करती है?*'' किसी भी काम के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि ''कब से ऐसा किया जा रहा है?'' बल्कि यह है कि ''इसका आरज़्भ कहां से हुआ था?''

''*विचार की स्वतन्त्रता की बातों में।*'' ''विचार की बात'' इतनी महत्वपूर्ण है, जिसे परमेश्वर ने अपने वचन में नहीं कहा है। इसमें व्यज़्तिगत निर्णय शामिल है। ऐसे मामलों में हम दूसरों पर अपने विचार न थोपें। ''स्वतन्त्रता'' आदर्श वाज़्य है।[16] यह हमें अपने मन को टटोलते रहने के लिए कहता है: ''*किसी आज्ञा को पूरा करने के लिए, समय के द्वारा,*

आज्ञा की तरह ही मेरे मन में उसी महत्व की तरह लागू किया गया है ?''

''सब बातों, प्रेम में।'' ''जब'' निर्णय लेने की बातों में साथी मसीही हम से सहमत नहीं होते, तब भी हमें उन से प्रेम करना चाहिए (यूहन्ना 13:35; रोमियों 12:10)। इस मूल सिद्धांत की अनदेखी के कारण विश्वासी भाइयों को बाहर निकाल दिया जाता है और मण्डलियों में फूट पड़ जाती है। सबको यह प्रश्न पूछना आवश्यक है: *''हानि न पहुंचाने वाली परज़्पराओं के सज़्बन्ध में जो वचन की किसी बात का उल्लंघन नहीं करतीं और हम पर व्यवस्था के रूप में लागू नहीं होतीं ज़्या मुझ में मसीह का आत्मा है ?''* किसी चीज़ को किसी विशेष ढंग से केवल इसलिए करते रहने की ज़िद करना कि ''हम तो ऐसा ही करते आए हैं'' मूर्खता है। केवल अलग ढंग से करने की ज़िद करना भी ऐसी ही मूर्खता है।[17] जब विचार, प्रेम, ध्यान देने के मामले पर असहमति हो तो संवेदनशीलता ही काम आएगी।

परज़्पराओं का विषय जटिल है। मूल सिद्धांतों को बताना कठिन नहीं है, परन्तु उन्हें लागू करना कठिन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इसलिए यह विषय महत्वहीन है या हमें मज़ी 15 और मरकुस 7 में यीशु के सिखाए सिद्धांतों को समझने और मानने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इसके बजाय, इसका अर्थ यह है कि किसी को भी इतना स्पष्ट दावा नहीं करना चाहिए कि उसके पास हर बात का उज़र है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अध्ययन करने, फिर से अध्ययन करने और फिर उठने वाले हर ''मुद्दे'' पर और अध्ययन करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हमें एक-दूसरे के साथ धीरज रखना चाहिए (इफिसियों 4:2)।

मैं परमेश्वर का धन्यवाद करता हूं कि परज़्पराओं के विषय जैसा कठिन हर विषय नहीं है। उदाहरण के लिए पाप से उद्धार की बात पर विचार करें। ज़्या यह अद्‌भुत नहीं है कि प्रभु ने इसे इतना स्पष्ट कर दिया है ? यीशु ने हम से प्रेम किया और हमारे पापों के लिए मारा गया (यूहन्ना 3:16; 1 कुरिन्थियों 15:1-3) और अब हमें चाहिए कि प्रेम से आज्ञा मानते हुए उसे ग्रहण करें (यूहन्ना 3:16; मरकुस 16:16; प्रेरितों 22:16)। हो सकता है कि परज़्पराओं के बारे में हमारे पास हर उज़र न हो, परन्तु हम उस *प्रश्न* का *उज़र* जान सकते हैं, जो सबसे महत्वपूर्ण है: ''उद्धार पाने के लिए मैं ज़्या करूं ?'' (प्रेरितों 2:37, 38; 8:36-38; 16:30-33 का अध्ययन करें।) आप चाहें तो परज़्पराओं के प्रश्नों का उज़र ढूंढ़ने के लिए पूरा जीवन लगा दें, परन्तु उसकी इच्छा को पूरा करने के लिए ज़रा भी देरी न करें। यदि आपने उसकी आज्ञा नहीं मानी है, तो अभी मान लें!

टिप्पणियां

[1]पिछले प्रवचन में दूसरा भाग ''जब कोई परज़्परा बुरी होती है'' देख सकते हैं। [2]पिछले प्रवचन की तरह, इस प्रवचन के मुज़्य शीर्षकों में ''परज़्परा'' शज़्द का अर्थ मनुष्यों की परज़्परा ही होगा। [3]''व्यर्थ'' के लिए अंग्रेज़ी शज़्द का अर्थ ''घमण्डी'' हो सकता है। बाइबल में दिए शज़्द का अधिक सामान्य अर्थ ''खाली, बेकार, किसी काम का नहीं'' है। (ध्यान दें कि सभोपदेशक 1:14 में इस शज़्द का बदल कैसे इस्तेमाल किया

गया है।) [4]इसे समझाने का एकमात्र ढंग जो मुझे पता है, वह जहां मैं रहता हूं वहां की परिस्थितियां बताना है। निश्चय ही आपको संसार के जिस भाग में आप रहते हैं, वहां के लिए प्रासंगिक उदाहरणों का इस्तेमाल करना चाहिए। [5]मैं यह मान रहा हूं कि मेरे सुनने वाले देखेंगे कि जिन वैकल्पिक प्रबन्धों का मैंने उल्लेख किया है, वे बाइबल से बाहर *नहीं* हैं, और यह कि ''नहीं'' में उज़र हर प्रश्न के बाद समझ आता है। [6]ब्रिटिश (अंग्रेज़ी की) पृष्ठभूमि वाली मण्डलियों में रविवार प्रात: की आराधना ऐसी ही होती है। [7]कुछ लोग घरों में रविवार रात्रि की आराधना होने की *समझ* पर प्रश्न उठा सकते हैं, परन्तु यह प्रश्न औचित्य का है, न कि वचन के अनुसार होने का। [8]इस चर्चा का एक भाग उस मण्डली के प्रति ऐल्डरों की ज़िम्मेदारी है, जिस पर वे अध्यक्ष हैं अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा करते हुए, वे ऐसे निर्णय लेते हैं, जो उस मण्डली को प्रभावित करते हैं, परन्तु उन्हें इस बात की समझ होनी आवश्यक है कि अन्य मण्डलियों को उनके निर्णयों को मानने की आवश्यकता नहीं है। स्थानीय स्वायज़ता का यही सिद्धांत है। एक बार फिर, मैं कहता हूं कि विश्वास की बातों और विचार की बातों में अन्तर किया जाना आवश्यक था। [9]इस पर उसका तर्क था कि प्रभु-भोज के तुरन्त बाद चंदा लेना सुविधाजनक तो है, परन्तु लोगों को यह समझ होनी आवश्यक है कि आवश्यक नहीं है कि चंदा प्रभु भोज के बाद ही लिया जाए। [10]उसे यह भी लगा हो सकता है कि हमने ''आराधना के कार्यों'' में से एक (अर्थात चंदा) निकाल दिया है, ज़्योंकि हमने तब नहीं लिया था जब उसे उज़्मीद थी कि लिया जाना चाहिए।

[11]''परज़्परागत परिवार'' का प्रबन्ध परमेश्वर की ओर से है और उत्पज़ि के आरज़्भिक अध्यायों के समय से ही है। ''परज़्परागत परिवार'' पर ''समलैंगिक विवाहों'' की वकालत करने वालों और परमेश्वर के वचन से दूसरे अन्तरों (जैसे ''इकट्ठे रहने'' के प्रबन्ध बनाम विवाह करना) की वकालत करने वालों के आक्रमण हो रहे हैं। [12]यदि सुनने वालों में बच्चे भी हैं, तो बीच में आपको बहुत सी माताओं के लिए ज़ोर देने के लिए कहना चाहिए कि उनके बच्चों को खाने से पहले हाथ धोने चाहिए, यीशु ने बिल्कुल मना नहीं किया। माताओं को साफ़-सफ़ाई का ध्यान होता है। यीशु कर्मकाण्ड की बात कर रहा था। [13]मरकुस के शज़्दों का अर्थ यह नहीं है कि किसी समय, चेलों को समझ आ गया कि बात ऐसी ही थी। मरकुस तीस या इससे अधिक वर्षों के बाद लिख रहा था। पीछे देखते हुए, परमेश्वर की प्रेरणा पाए हुए लोगों ने देखा कि इस सच्चाई का मसीह की कही बात से मिलता-जुलता निष्कर्ष निकलता था। [14]पतरस प्रेरितों 10 अध्याय की घटनाओं तक (मरकुस 7:14, 15) की अवधारणाओं से जूझता रहा। [15]आर. सी. फोस्टर, *स्टडीज़ इन द लाइफ़ ऑफ़ क्राइस्ट* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1971), 669. [16]बाइबल सिखाती है कि हम अपनी स्वतन्त्रता का इस्तेमाल इस प्रकार न करें, जिससे कलीसिया को और दूसरे मसीहियों को ठोकर लगे (देखें 1 कुरिन्थियों 8:9), परन्तु मसीही स्वतन्त्रता की गहराई से चर्चा करना हमारे इस पाठ से बहुत आगे की बात है। [17]कुछ लोगों और मण्डलियों ने अपने आप को अलग करने की ठान ली है। इसलिए नहीं कि उन्हें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिल गया है कि उनका मार्ग ही सही है, बल्कि इसलिए ज़्योंकि वे उसके विरुद्ध, जो उन्हें मिला है, विद्रोह कर रहे हैं। यह आत्मिक ''नादानी का व्यवहार'' है। केवल अलग दिखने के लिए अलग बनना बेकार है।